शोध मंथन Vol. XIII No.II Apr.-June 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

याज्ञवल्क्य स्मृति में दायविधानः एक ऐतिहासिक अध्ययन

प्राप्तिः 20.05.2022
स्वीकृतः 04.06.2022

46

अंजली गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
रघुनाथ गर्ल्स (पी०जी०) कॉलेज
मेरठ (उ०प्र०)
ईमेलः *guptaanjali18874@gmail.com*

सारांश

स्मरण परंपरा से जिन शास्त्रीय नियमों, परंपराओं और आचार संहिताओं को जीवित रखा गया है, उन्हें स्मृति कहा जाता है। स्मृति साहित्य में मनुस्मृति के पश्चात याज्ञवल्क्य स्मृति का नाम आता है। किन्तु बहुत से विद्वान व्यवहारिक महत्व की दृष्टि से इसे मनुस्मृति से भी श्रेष्ठ मानते हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में धर्म अर्थात आचार–व्यवहार एवं कर्मानुष्ठान विषयक सिद्धांतों की प्रधानता है। स्मृतिकार ने समाज की सुव्यवस्था एवं सामाजिक एकता हेतु महान आचार प्रणालियों एवं उच्च न्याय विधियों का प्रतिपादन किया है। यद्यपि याज्ञवल्क्य स्मृति का प्रणयन सुदूर अतीत में हुआ है जब समाज की आवश्यकतायें और समस्यायें भिन्न थी। आज समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं राजनीतिक प्रणाली और न्याय व्यवस्था भी बदल चुकी है। परिणामस्वरूप नवीन विचारधारा के अनुरूप प्राचीन विधि विधानों का विश्लेषण होता जा रहा है जिससे युग परिवर्तन के साथ विधि परिवर्तन भी हो रहे हैं और आवश्यकतानुसार नए विधान भी प्रतिष्ठित किए जा रहे हैं परंतु यह अटल सत्य है कि प्राचीन काल से आज तक भारतीय जीवन इन विधानो से ही न्यूनाधिक निरंतर प्रभावित होता रहा है। और ये विधान हीं आधुनिक हिंदू विधि के मूल आधार अथवा स्रोत हैं। अतः इसमें निहित दाय एवं विभाजन विषयक सिद्धांत कुछ अंतर के साथ आज भी सर्वमान्य हैं। प्रस्तुत शोध पत्र मे याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित संपत्ति के बंटवारे की व्यवस्था अर्थात बंटवारा कैसे, कब और किस–किस के मध्य हो इन सब तथ्यों को प्रस्तुत किया जाएगा। साथ ही यह भी सिद्ध करने का प्रयास भी किया जायेगा कि प्राचीन स्मृतिकार द्वारा प्रस्तुत विधि विधान वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं।

मुख्य बिन्दु

याज्ञवल्क्यस्मृति, दायविधान, पैतृक संपत्ति, स्त्रीधन, दाय विभाजन।

मानवीय आकांक्षाओं की अभिवृद्धि, समाज के विकास एवं उसकी आवश्यकता के विस्तार ने चिंतन को नए आयाम दिए। सीमित साधन और जनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि ने विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया। इन्हीं समस्याओं ने सामाजिक एवं राजनीतिक नियामक पैदा किये, समाज को विनियमित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।[1] प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने मानव के व्यक्तिगत

और सामाजिक जीवन के विकास तथा संचालन के लिए नियमों और परंपराओं का निर्धारण किया। इन नियमों में विरासत में प्राप्त संपत्ति से संबंधित प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया है। अनादि काल से ही मानव जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए धन–सम्पत्ति को नितांत आवश्यक माना गया है। यह वह साधन है जिससे मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। आज के भौतिकवादी युग में संपत्ति को ऐश्वर्य का प्रतीक माना जाता है हर व्यक्ति अधिक से अधिक धन–संपत्ति प्राप्त करना चाहता है। चाहें वह सम्पत्ति अर्जित की जाये अथवा उत्तराधिकार में प्राप्त की जाये। अतः संपत्ति की बात आते ही परिवार में विवाद प्रारम्भ हो जाते हैं। यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि वर्तमान में भारतीय न्यायालय में लंबित मामलों में से कम से कम दो–तिहाई संपत्ति से जुड़े हैं। संपत्ति की धारणा के संबंध में बुच का दृष्टिकोण अवलोकनीय हैं जब तक वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में रहती है तब तक स्वामित्व का प्रश्न खड़ा नहीं होता।[2] स्वामित्व की बात आते ही विवाद उत्पन्न हो जाते हैं और इन विवादों को हल करने के उद्देश्य से ही प्राचीन स्मृतिकारों, विशेष रूप से याज्ञवल्क्य ने इस संदर्भ में बहुत से विधान प्रस्तुत किए हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में दाय का बहुत विस्तार किया गया है दाय के लिए उपयुक्त सामग्री क्या है? दाय कब मिल सकता है? किसको मिल सकता है? किस अनुपात में मिलेगा? इत्यादि प्रश्नों पर सविस्तार विचार हुआ है।[3]

दाय विधान से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसके तहत उत्तराधिकारी में संपत्ति के विभाजन की व्यवस्था की जाए।

याज्ञवल्क्य स्मृति में दाय एवं संपत्ति–विभाजन सम्बन्धी विषयों का विवेचन 'व्यवहाराध्याय के अंतर्गत हुआ है। प्रस्तुत स्थल पर 'व्यवहार' शब्द का तात्पर्य किसी वस्तु पर स्वत्व (अपना अधिकार) के लिए विवाद है। इन विवादों के निराकरण हेतु संविधान अथवा कानून निर्मित किए जाते हैं जिससे समाज की सुव्यवस्था एवं सुरक्षा बनी रहे। व्यवहाराध्याय में अनेक सामाजिक समस्याओं एवं उनके समाधानों पर बड़ी गंभीरता से विचार किया गया है। ये व्यवहार विधान समाज की उन्नति एवं सुव्यवस्था के लिए अत्यंत उपादेय, महत्वपूर्ण, सर्वजन उपयोगी एवं ग्रहाय है। आज के युग में दायभाग अर्थात संपत्ति का बंटवारा विषयक व्यवहार पद अत्यंत उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। आज के न्यायालयों में इस विषय से संबंधित अनेक विधि विधानों का प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। विज्ञानेश्वर ने दाय को स्पष्ट करते हुए यह मत दिया है कि जो धन उसके स्वामी के संबंध से किसी अन्य की संपत्ति हो जाता है उसे दाय कहते हैं। वस्तुतः रक्त संबंधियों के धन का पुत्र, पौत्र, पुत्री, पौत्री, पितृव्य, भ्रातव्य आदि में विभाजन दाय कहा जाता है। दाय के विवेचन में स्व और स्वामी की भावना निहित रहती है। स्व का अर्थ है जो किसी का है अर्थात संपत्ति। स्वामी का अर्थ है अधिकारी।[4] दाय के संबंध में याज्ञवल्क्य स्मृति में निम्नलिखित प्रावधान दिए गए हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति में विभाजन योग्य संपत्ति को दो श्रेणी में रखा गया है– संयुक्त कुल संपत्ति एवं पृथक संपत्ति। संयुक्त कुल संपत्ति या तो पैतृक होती है या पैतृक संपत्ति की सहायता से अथवा बिना उसकी सहायता से संयुक्त रूप से अर्जित की जाती है। इस संबंध में याज्ञवल्क्य का मत है कि संयुक्त संपत्ति में न केवल पैतृक संपत्ति का समावेश होता है अपितु कृषि, वाणिज्य आदि से सब सदस्यों द्वारा मिलकर बढ़ाई गई संपत्ति भी सम्मिलित होती है। याज्ञवल्क्य ने संयुक्त कुल संपत्ति के तीन प्रकारों का विवेचन किया है– अचल संपत्ति– भूमि, गृह आदि, चल या जंगम संपत्ति– सोना, चांदी आदि, निबंध– एक व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति (राजा आदि) अथवा विभिन्न संस्थाओं से नियत

काल में मिलने वाली निश्चित राशि। संयुक्त कुल संपत्ति के विभाजन में विभिन्न दायादों का भाग निश्चित करने से पूर्व पैतृक संपत्ति से पारिवारिक ऋण, पिता द्वारा दिए जाने वाले उपहार, संयुक्त कुटुंब की संपत्ति में से अंश न ग्रहण करने वाले पुरुष तथा स्त्री सदस्यों के भरण–पोषण आदि के व्ययों की भी व्यवस्था होनी चाहिए। संयुक्त संपत्ति के अतिरिक्त व्यक्ति का कुछ पृथक संपत्ति पर अधिकार होता है, जो अविभाज्य होती है। जब कोई विभाजन द्वारा पैतृक संपत्ति से कोई अंश प्राप्त करता है तो वह उस व्यक्ति की पृथक संपत्ति कहलाती है। व्यक्ति परिश्रम एवं योग्यता से उपार्जित अविभाज्य संपत्ति को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– विद्याधन, अन्य प्रकार की स्वार्जित संपत्ति। याज्ञवल्क्य ने विद्याधन को सामान्यतया अविभाज्य माना है। अविभाज्य धन के संदर्भ में याज्ञवल्क्य का कथन है कि पैतृक संपत्ति की सहायता के बिना स्वयं अर्जित धन, मित्र से मिला हुआ धन तथा विवाह में प्राप्त धन में से, अन्य भाइयों का हिस्सा नहीं होता है।[5] इसी तरह वह पैतृक संपत्ति जो किसी कारणवश किसी अन्य के अधीन हो गई हो उसको छुड़ाने वाला पुत्र उस संपत्ति का अधिकारी होता है। अपनी विद्या से अर्जित धन में से ही किसी और का हिस्सा नहीं होता है। विद्या धन के संबंध में टीकाकार विज्ञानेश्वर ने नारद के विचारों का समर्थन करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि विद्या उपार्जन करते समय यदि उसके परिवार का भरण पोषण दूसरा भाई करता है तो वह अविद्वान होते हुए भी अपने भाई के विद्याधन में से कुछ भाग पाने का अधिकारी है।[6] याज्ञवल्क्य ने विद्याधन के अतिरिक्त मित्रों द्वारा, अथवा विवाह के समय दिए गए उपहार को स्वार्जित सम्पत्ति श्रेणी में सम्मिलित किया है। कुछ संपत्ति ऐसी होती है जो स्वरूपतः अविभाज्य होती है उसका उपभोग संयुक्त रूप से अथवा बारी–बारी से होता है क्योंकि विभक्त होने पर वह निरुपयोगी हो जाती है।

जहां पर किसी संपत्ति का स्वामित्व संयुक्त रूप से होता है वहां पर उस संपत्ति के भागों की निश्चित व्यवस्था विभाजन शब्द से जानी जाती है। पैतृक संपत्ति का विभाजन किस प्रकार किया जाए और उसका स्वरूप क्या हो जिससे पारिवारिक सामंजस्य बना रहे इस भावना को ध्यान में रखते हुए याज्ञवल्क्य ने निर्णय दिया कि धन का वह बंटवारा उचित हैं जिसमें पिता स्वयं ही अपने पुत्रों में धन का बंटवारा कर दें। यदि पिता धन का बंटवारा करता है तो वह अपनी इच्छा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग दे सकता है अथवा सबको बराबर हिस्सा भी दे सकता है। यदि वह सबको समान भाग देता है तो उसे उन स्त्रियों को भी हिस्सा देना चाहिए जिन्हें अपने पति या श्वसुर से स्त्री धन न मिला हो।[7] याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्रों में धन का विभाजन कर देने के बाद यदि सवर्णा स्त्री से कोई पुत्र उत्पन्न होता है तो वह भी अंश का अधिकारी हो जाता है। इसी तरह पिता की मृत्यु के बाद गर्भवती माता से कोई पुत्र यदि उत्पन्न होता है तो वह भी भाग का अधिकारी होता है।[8] याज्ञवल्क्य के अनुसार माता पिता जिस पुत्र को जो धन देते हैं वही धन उसका होता है और पिता की मृत्यु के बाद माता भी पुत्रों के बराबर भाग की अधिकारी होती है।[9] पिता की मृत्यु के बाद यदि भाइयों का विभाजन होता है तो जिन भाइयों का संस्कार नहीं हुआ है उनका संस्कार सम्मिलित धन से होना चाहिए और यदि बहनों का विवाह नहीं हुआ हो तो सभी भाई अपने भाग से चतुर्थांश देकर उसका विवाह करें।[10]

याज्ञवल्क्य ने अनुलोमज पुत्रों के दाय का निर्धारण करते हुए कहा है कि वर्णानुसार ब्राह्मण के चार प्रकार के पुत्रों में से क्रमशः ब्राह्मणी से उत्पन्न को चार, क्षत्रिय से उत्पन्न को तीन, वेश्या से उत्पन्न को दो और शुद्रा से उत्पन्न को एक भाग मिलता है। इसी तरह क्षत्रिय का वर्णानुसार स्त्रियों

से उत्पन्न पुत्रों को तीन, दो और एक भाग तथा वैश्य का क्रमश दो और एक भाग होता है।[11] इस तरह याज्ञवल्क्य ने अनुलोम विवाह से उत्पन्न पुत्रों के दाय का निर्धारण तो किया है, लेकिन उन्होंने प्रतिलोमज पुत्रों के दाय के विषय में कुछ भी नहीं कहा है।

याज्ञवल्क्य ने ऐसे धन को भी बाद में बांट लेने का निर्देश दिया है जो धन बंटवारे के समय किसी भाई द्वारा छिपा लिया गया हो।[12] याज्ञवल्क्य ने नियोग विधि से उत्पन्न पुत्रों के दाय का विवेचन करते हुए कहा है कि वह पुत्र माता तथा उस पिता के धन का भी अधिकारी हो जाता है।[13] इसे स्पष्ट करते हुये विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि देवर आदि के द्वारा दूसरे की पत्नी में गुरुजनों की अनुमति से उत्पन्न पुत्र बीज तथा क्षेत्र दोनों के धन का भागी होता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार शूद्र द्वारा दासी से उत्पन्न पुत्र भी पिता की इच्छा से अंश का अधिकारी होता है। पिता की मृत्यु के बाद शूद्र के पुत्र उस दासी–पुत्र को आधा भाग दे, लेकिन यदि केवल दासी पुत्र ही हो तो वहीं पूरे धन का अधिकारी हो जाता है।[14]

याज्ञवल्क्य ने पुत्रहीन की संपत्ति पर अधिकार के विषय में कहा है कि पुत्रहीन की मृत्यु के पश्चात् उसकी संपत्ति के पत्नी, पुत्रियां, माता–पिता, भाई, भाइयों के पुत्र, गोत्र से उत्पन्न व्यक्ति, बंधु, शिश्य और ब्रह्मचारी में से पहले पहले के नहीं होने पर उसके बाद वाले अधिकारी होते हैं। यह विधि सभी वर्णों के लिए समान है।[15] याज्ञवल्क्य के अनुसार वानप्रस्थी, यति और ब्रह्मचारी की संपत्ति के अधिकारी क्रमशः उसके धर्म भ्राता, समान तीर्थी, शिश्य और आचार्य होते हैं।[16] विभक्त होकर फिर एक होने को संसृष्टी कहा जाता है ऐसे किसी संसृष्टी की मृत्यु हो जाने पर उस धन अधिकारी दूसरा संसृष्टी ही होगा, न कि उस मृत संसृष्टी की पत्नी आदि। यदि मृत संसृष्टी की पत्नी गर्भवती हो तो उससे उत्पन्न पुत्र पुनः मृत संसृष्टी के हिस्से का अधिकारी होता है।[17] याज्ञवल्क्य ने नपुंसक, पतित–पुत्र, पंगु, पागल तथा असाध्य रोग से ग्रस्त के लिए दाय को स्वीकार नहीं किया है। केवल उन्हें भरण पोषण का ही अधिकार है। किंतु यदि इन नपुंसक आदि में औरस या क्षेत्रज पुत्र निर्दोष हो तो उन्हें अंश प्राप्त होता है। इनकी पुत्रियों का भी तब तक पालन करना चाहिए जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता है। पुनः यदि इनकी पुत्रहीना पत्नियां सदाचारणी हों तो उनका भरण पोषण करना चाहिए। और यदि दुराचारिणी हो गई हो तो उन्हें निर्वासित कर देना चाहिए।[18]

याज्ञवल्क्य ने स्त्रीधन अर्थात स्त्री की संपत्ति के विषय में भी व्यापक विचार प्रस्तुत किए हैं।' t gkaukjh dh itwk gksh gSogkanor k fuokl djrsgS dh Hkouk l svkscks Lefr dkjkausfL=;ka dksu fl QZokpfud egRo fn;k gSvfir q ekt rFkk ifjokj esmudsegRo rFkk l Eeku dkscuk; j[kusdsfy, Qfä xr LokfeRo dk Hkh funZk fn;k gSl fjokj dh l afÙk l sfL=;kadh l afÙk dks iFkd j[kusdsfy, L=h èku dk iFkd mYys[k fd;k x;k gS ;kKoYD; ,Is çFke Lefr dkj Fks ftUgkausfoLrkj l sL=hèku vkSj ml dsnk; dk foopu fd;k gSL=hèku dh dkuS;ksdk oxÊdj.k djrsgq mUgkasfirk] ekrk] ifr vkSj HkkÃ ds}kjk fn, gq èku] fookg ds l e; vfXu dsfud V çkIr èku rFkk nwljsfookg ds l e; ifr }kjk igyh iRuh dk Hkj.kiks"k.k dsfy, fn, gq èku dksL=h èku dgk gSmUgkasL=h dsekr`i{k, oafi=i{k dscèkqksa}kjk fn, x, èku] L=h"kqYd vkSj fookg dscln ifr dqy vFkok fir`i{k l sçkIr èku dksHkh L=hèku dsvarxZr j[kk gS[19] स्त्री धन पर स्त्रियों का स्वतंत्र अधिकार होता है क्योंकि वह धन उनके संबंधियों द्वारा इसलिए दिया जाता है कि वह दुर्दशा को न प्राप्त हो सकें। इस संपत्ति के विक्रय अथवा दान का स्त्रियों को अधिकार है।

स्त्री धन के उत्तराधिकारी के संबंध में याज्ञवल्क्य का मत है कि स्त्री धन का उत्तराधिकार सर्वप्रथम कन्याओं को मिलना चाहिए अर्थात पुत्रों की अपेक्षा पुत्रियों को वरीयता मिलनी चाहिए। पुत्रियों के अभाव में स्त्रीधन पर पुत्रों का अधिकार होता है।[20] याज्ञवल्क्य का यह भी मत है कि बंधुओं द्वारा दिया गया शुल्क और विवाह के पश्चात जो कुछ भी स्त्री को प्राप्त होता है वह स्त्री के निः संतान मर जाने पर बान्धवों को प्राप्त होता है।[21] याज्ञवल्क्य ने कहा है कि यदि ब्रह्म, देव, आर्श अथवा प्रजापत्य विवाह हुआ हो तो निसंतान स्त्री की मृत्यु पर उसका धन पति को मिलता है। इन चार प्रकार की विवाहों के अतिरिक्त अन्य प्रकार का विवाह होने पर उस स्त्री का धन पिता का होता है लेकिन इन सभी विवाहों में स्त्री की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर उसकी पुत्रियों का अधिकार होता है।[22] याज्ञवल्क्य आवश्यकता पड़ने पर स्त्री धन को पति के लिए ग्राहय मानते हैं ऐसा लिया हुआ धन पुनः लौटा दिया जाता है। लेकिन दुर्भिक्ष के समय, धर्म कार्य में, रोग में और बंदी बनाए जाने पर लिया हुआ स्त्रीधन लौटाना नहीं पड़ता है।[23]

दाय विभाजन के संदर्भ में स्मृतिकार ने सम विभाजन एवं विषम विभाजन दोनों ही व्यवस्थाओं का उल्लेख किया है। कहीं वे पिता को सवर्ण जाति की पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों में समान रूप से संपत्ति के विभाजन का आदेश देते हैं तो कहीं वे पिता द्वारा मनोनुकूल ढंग से दाय विभाजन करने तथा ज्येष्ठ पुत्र को संपूर्ण संपत्ति अथवा संपत्ति का विशेष भाग देने का निर्देश देते है। वस्तुतः उत्तराधिकार क्रम का निर्णय आध्यात्मिक लाभ कराने की योग्यता पर आधारित है। श्राद्ध, पिंडदान तथा पितृऋण जैसे महत्वपूर्ण विधान ज्येष्ठ पुत्र द्वारा करणीय होते हैं अतः स्मृतिर्का ने ज्येष्ठाधिकार की विशेष विधि का विरोध होने पर भी ज्येष्ठ पुत्र को कुछ विशेष अंश प्रदान कर उसे संतुष्ट करने के पश्चात ही समान विभाजन का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य के मतानुसार ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग, मझले को मध्यम भाग एवं कनिष्ठ को कनिष्ठ भाग देकर विभाजन करना चाहिए अथवा सभी को समान विभाजन करना चाहिए। इस तरह धीरे–धीरे विषम विभाग के प्रचलन का लोप होने लगा एवं विभाजन के समय पुत्रों में समान अधिकार की भावना तीव्रतर होती गई फलस्वरूप विज्ञानेश्वर ने स्पष्ट घोषणा की यद्यपि शास्त्रों में विषम विभाग की व्यवस्था देखी जाती है किंतु उसका पालन नहीं करना चाहिए, क्योंकि शास्त्र सम्मत कार्य भी लोकविरूद्ध होने पर व्यवहार में प्रयुक्त करना अनुचित होता है।[24] इस प्रकार आधुनिक युग में कुछ अपवादों को छोड़कर सम विभाजन का नियम प्रचलित है। पिता के जीवित रहते विभाजन के लिए प्रयास करना सामाजिक दृष्टि से निंदनीय माना गया है इसका कारण यह हो सकता है कि संपूर्ण कुल के भरण–पोषण का उत्तरदायित्व पिता पर ही होता था क्योंकि वही कुटुंब का या कबीले का मुखिया होता था इससे पारिवारिक समरसता के साथ–साथ सामाजिक सामंजस्य भी बना रहता था। यद्यपि स्मृतिकारो ने 'विभाजन एक ही बार होता है' ऐसा निर्णय लिया है परंतु इसके अपवाद भी मिल जाते हैं यथा कोई पिता क्रोध वश यदि एक पुत्र को संपत्ति से वंचित कर दे तो उसके द्वारा किया गया विभाजन परिवर्तित हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि याज्ञवल्क्य स्मृति में संपत्ति के विभाजन के संदर्भ में विभिन्न विधान प्रस्तुत किए गए हैं। जो कि वर्तमान में भी उपयोगी है। वस्तुतः स्मृतिकार द्वारा निर्धारित विधि विधानों को आवश्यकता अनुसार कुछ परिवर्तन के साथ वर्तमान काल में भी स्वीकार किया गया है जो वर्तमान समय की परिस्थितियों एवं मान्यताओं के अनुसार स्वभाविक एवं पूर्णतया उचित है। वर्तमान में सरकार ने संपत्ति के अधिकार से संबंधित विभिन्न कानून बनाए हैं ताकि संपत्ति संबंधित

विवादों को कम किया जा सके। वर्तमान काल की न्यायिक प्रणाली में भी उक्त अर्थ को स्वीकार करते हुए निर्णय लिए जाते हैं। आज के युग में दाय भाग अर्थात संपत्ति का बंटवारा विषय अत्यंत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

संदर्भ

1. विद्यार्थी, प्रभु नारायण. स्मृतियों में प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था. पृष्ठ **6.**
2. बुच, एम. ए. ए सर्वे ऑफ इकोनॉमिक्स एंड इकोनामिक लाइफ एन शियेंट इंडिया भाग 2. पृष्ठ **1.**
3. पाण्डेय, राजबली. हिंदू धर्मकोश. पृष्ठ **319.**
4. आर्य, डॉक्टर भारती. (2007). स्मृतियों में नारी. विश्व भारती अनुसंधान परिषदः ज्ञानपुर, भदोही. द्वितीय संस्करण. पृष्ठ **104.**
5. उप्रैती, पं. थानेशचन्द. (2001). याज्ञवल्क्य स्मृति. व्यवहाराध्यायः श्लोक सं० 118–119. पृष्ठ **234.**
6. याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 119 पर मिताक्षरा टीका।
7. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 114–115. पृष्ठ **256.**
8. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 122 पृष्ठ **263.**
9. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 123. पृष्ठ **264.**
10. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 123–124. पृष्ठ **264–266.**
11. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 125. पृष्ठ **266.**
12. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 126. पृष्ठ **267.**
13. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 127. पृष्ठ **269.**
14. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 133–134. पृष्ठ **273.**
15. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 135–136. पृष्ठ **280.**
16. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 137. पृष्ठ **280.**
17. उप्रैती, पं. थानेशचन्द. (2001). याज्ञवल्क्य स्मृति. व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या 138. पृष्ठ **242–243.**
18. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 140–142. पृष्ठ **283–284.**
19. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 143. पृष्ठ **284–285.**
20. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 117. पृष्ठ **259.**
21. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 144. पृष्ठ **285.**
22. राय,डा. गंगासागर (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 145. पृष्ठ **286.**
23. राय, डा. गंगासागर. (2013). याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 147. पृष्ठ **287.**
24. याज्ञवल्क्य स्मृति. अध्याय 2. श्लोक संख्या 117 पर मिताक्षरा टीका।